पद्य-खण्ड

पद्य साहित्य का इतिहास

अतीत के तथ्यों का वर्णन-विश्लेषण, जो कालक्रमानुसार किया गया हो, इतिहास कहा जाता है।

साहित्य के इतिहास में हम साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में करते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक है, साथ ही इनके रचनाकारों की परिस्थितियों एवं मनोभावनाओं को जानना भी आवश्यक है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का सर्वप्रथम कार्य फ्रेंच विद्वान 'गार्सा द तासी' द्वारा प्रारंभ किया गया जो 'इस्त्वार द ला लितरेत्यूर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' ग्रन्थ के रूप में दो भागों में सन् 1839 एवं सन् 1847 ई. में प्रकाशित हुआ। यद्यपि गार्सा द तासी के इस ग्रन्थ में अनेक कमियाँ थीं परन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की आधारशिला अवश्य इस ग्रन्थ में रखी गई। इसके उपरांत अनेक विद्वानों द्वारा समय-समय पर हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का कार्य किया गया। सन् 1929 ई. में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा हिन्दी साहित्य के इतिहास को प्रामाणिक रूप से लिखा गया, जो सर्वमान्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा ही सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य को प्रामाणिक काल-विभाजन के रूप में विभक्त कर काल के नामकरण किए गए। उन्होंने हिन्दी साहित्य के लगभग 1000 वर्षों के इतिहास को चार कालों में विभक्त कर नया नामकरण भी किया -

1. आदिकाल	- वीरगाथाकाल	- सं.1050 से सं. 1375 (सन् 993 से 1318)
2. पूर्वमध्यकाल	- भक्तिकाल	- सं.1375 से सं. 1700 (सन् 1318 से 1643)
3. उत्तर मध्यकाल	- रीतिकाल	- सं.1700 से सं. 1900 (सन् 1643 से 1843)
4. आधुनिक काल	- वर्तमान काल	- सं.1900 से अद्यतन (सन् 1843 से आज तक)

कक्षा 9 वीं में आप आदिकाल और भक्तिकाल के संबंध में पढ़ चुके हैं। पुनरावृत्ति न हो इसलिए यहाँ पर केवल रीतिकाल और आधुनिक काल का ही परिचय दिया जा रहा है।

रीतिकाल (उत्तर मध्यकाल) सं. 1700-सं. 1900 तक

रीति का अर्थ है प्रणाली, पद्धति, मार्ग, पंथ, शैली, लक्षण आदि। संस्कृत साहित्य में 'रीति' का अर्थ होता है 'विशिष्ट पद रचना।' सर्वप्रथम वामन ने इसे 'काव्य की आत्मा' घोषित किया। यहाँ रीति को काव्य रचना की प्रणाली के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा प्रणाली के अनुसार काव्य रचना करना, रीति का अर्थ मान्य हुआ। यहाँ पर रीति का तात्पर्य लक्षण देते हुए या लक्षण को ध्यान में रखकर लिखे गए काव्य से है। इस प्रकार रीति काव्य वह काव्य है, जो लक्षण के आधार पर या उसको ध्यान में रखकर रचा जाता है।

नामकरण :- आचार्य शुक्ल का काल-विभाजन तत्कालीन कृतियों में परिलक्षित प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर हुआ है, परंतु कुछ विद्वानों ने रीतिकाल को अगल-अलग नाम दिए हैं। सर्वप्रथम इस युग का नामकरण मिश्रबन्धुओं ने किया और इस काल को 'अलंकृत काल' नाम दिया। आचार्य पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'शृंगार काल' नाम से अभिहित किया और डॉ. भगीरथ मिश्र ने इसे 'रीति युग' या अधिक से अधिक 'रीति-शृंगार युग' माना है। इन नामों में से दो ही पक्ष प्रबल दिखते हैं- रीतिकाल और शृंगार काल।

रीतिकाल से आशय हिन्दी साहित्य के उस काल से है, जिसमें निर्दिष्ट काव्य रीति या प्रणाली के अंतर्गत रचना करना प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति बन गई थी। 'रीति' 'कवित्त रीति' एवं 'सुकवि रीति' जैसे शब्दों का प्रयोग इस काल में बहुत होने लगा था। हो सकता है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने इसी कारण इस काल को रीतिकाल कहना उचित समझा हो। काव्य रीति के ग्रन्थों में काव्य-विवेचन करने का प्रयास किया जाता था। हिन्दी में जो काव्य-विवेचन इस काल में

हुआ, उसमें इसके बहाने मौलिक रचना भी की गई है। यह प्रवृत्ति इस काल में प्रधान है, लेकिन इस काल की कविता प्रधानत: शृंगार रस की है। इसीलिए इस काल को शृंगार काल कहने की भी बात की जाती है। 'शृंगार' और 'रीति' यानी इस काल की कविता में वस्तु और इसका रूप एक-दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं।

भक्ति मूलत: प्रेम ही है। रीतिकालीन प्रेम या शृंगार में धार्मिकता का आवेश क्रमश: क्षीण होता गया। भक्तिकाल का अलौकिक शृंगार रीतिकाल में आकर लौकिक शृंगार बन गया। इससे यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि इस काल में अलौकिक प्रेम (शृंगार), भक्ति या अन्य प्रकार की कविताएँ नहीं हुई। रीति का अवलंब लेकर भी कवियों ने सामान्य गृहस्थ जीवन के सीमित ही सही, मार्मिक चित्र खींचे हैं।

प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध शृंगार, नीति की मुक्त रचनाएँ रीतिकाल में प्रभावशाली ढंग से फिर प्रवाहित होती दिखलाई पड़ती है। भक्तिकाल में भक्ति के आवेग के सामने यह छिप सी गई थी। भक्ति की कविताओं की परंपरा इस काल में समाप्त नहीं हुई, किंतु कबीर, सूर, जायसी, तुलसी, मीरा जैसे लोक-संग्रही मानवीय करुणा वाले उत्कृष्ट भक्त कवियों के सामने इस काल के भक्त कवि कहाँ ठहरते? भक्ति इस काल की क्षीणमात्र काव्यधारा है, वह भी अपने को काव्य रीति में ढाल रही थी। यही कारण है कि इस काल के प्रारंभ में ही ऐसे अनेक कवि दिखलाई पड़ते हैं, जिनका विषय तो भक्ति है, किंतु लगते रीतिकाल के कवि हैं। ऐसे कवि वस्तुत: रीति धारा के ही कवि माने जाने चाहिए जैसे- केशव, गंग, सेनापति, पद्माकर आदि। इनकी भक्ति भी ठहरी हुई और एकरस है।

इस काल में रीति से हटकर स्वच्छंद प्रेम काव्य भी रचा गया जिसमें काव्य-कौशल होते हुए भी प्रेम विशेषत: विरह की तीव्र व्यंजना है। ऐसे कवियों की रचनाओं पर सूफी कवियों के 'प्रेम की पीर' का प्रभाव स्पष्ट है। घनानन्द इसी श्रेणी के कवि हैं। स्वच्छन्द प्रेम मार्ग पर चलकर रचना करने वाले अन्य कवि आलम, बोधा, ठाकुर हैं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए रीतिकालीन काव्य को तीन धाराओं में विभाजित किया जाता है-

1. रीतिबद्ध काव्य 2. रीतिमुक्त काव्य 3. रीतिसिद्ध काव्य ।

रीतिकालीन प्रमुख कवि

प्रमुख कवि	प्रमुख रचनाएँ
केशवदास	कविप्रिया, रसिक प्रिया, रामचंद्रिका, वीरसिंह देवचरित, रतन बाबनी, जहाँगीर-जस-चन्द्रिका।
भिखारीदास	काव्य निर्णय, शृंगार निर्णय, छन्द प्रकाश, रस सारांश।
रस निधि	रतन हजारा, विष्णुपद कीर्तन, गीति संग्रह, सतसई, हिण्डोला।
कुलपति मिश्र	संग्रामसार, रस रहस्य, (नखशिख) दुर्गा भक्ति, तरंगिणी।
सुखदेव मिश्र	ग्रंथ रक्षार्णव।
सेनापति	कवित्त रत्नाकर, काव्य-कल्पद्रुम।
देव	भाव विलास, भवानी विलास, रस विलास, प्रेमतरंग, काव्य रसायन, राधिका विलास, प्रेमचन्द्रिका।
भूषण	शिवराज भूषण, शिवा बाबनी, छत्रसाल दशक, अलंकार प्रकाश।
मतिराम	छंदसार, रसराज, साहित्य-सार, लक्षण, शृंगार ललित ललाम, मतिराम सतसई।
पद्माकर	हिम्मत बहादुर विरुदावली, जगद्विनोद, पद्माभरण, प्रबोध-पचासा, राम रसायन , गंगा लहरी।
बिहारी	बिहारी सतसई।

घनानंद	सुजान सागर, विरहलीला, रसकेलिवल्ली, कृपाकांड।
आलम	आलम केलि।
बोधा	इश्क-नामा, विरह-वारीश।
चिंतामणि	कविकुल कल्पतरु, काव्य विवेक, शृंगार-मंजरी।
ठाकुर	ठाकुर-ठसक, ठाकुर-शतक।
द्विजदेव	शृंगार-लतिका, शृंगार-बत्तीसी, शृंगार-चालीसा।

रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

रीतिकाल में अनेक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। इस काल में भक्ति, नीति, वैराग्य, वीरता के अनेक अच्छे कवि हुए हैं।

रीतिकालीन काव्य अधिकांशत: दरबारों में लिखा गया, अत: दरबार की रुचि का ध्यान रखकर काव्य रचने वाले कवियों में शृंगारपरकता अनिवार्य थी। उधर भक्ति में धार्मिकता और लोकोन्मुखता का आवेश कम होने पर शृंगार बचा रहा। कवियों ने शृंगार लीलाओं का वर्णन करना प्रारंभ कर दिया। शृंगार की प्रधानता के कारण कुछ विद्वान इसे शृंगार काल कहना उचित समझते हैं, किंतु इस काल की प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति रीति ही थी, क्योंकि भूषण जैसे वीर रस के कवि ने भी रीतिग्रंथ की रचना की है। अत: रीति में वीर रस के कवि भूषण आ जाते हैं। शृंगार कहने से ऐसे कवि छूटकर अलग जा पड़ते हैं।

रीतिकाल में मुक्तक काव्य की प्रधानता रही है। कवित्त, सवैया, दोहा, कुंडलियाँ- इस काल के बहुप्रयुक्त छन्द हैं। इस काल की भाषा ब्रजभाषा थी। विषय वस्तु की दृष्टि से इस काल की कविता बहुत सीमित है। प्रधानत: शृंगार और उसमें भी नायिका भेद ही मिलता है, किंतु रीतिपरक सूक्तियाँ भी दिखलाई पड़ती हैं। रहीम, वृंद, गिरिधर की नीतिपरक रचनाएँ बहुत लोकप्रिय रहीं। इसी प्रकार भक्ति की रचनाएँ भी दिखलाई पड़ती हैं।

रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य प्रधानत: दरबारी काव्य है। इस काव्य पर आश्रयदाताओं की रुचियों और कवियों की आश्रयदाताओं से पुरस्कार पाने की आशा का प्रभाव है। यह प्रधानत: मुक्तक काव्य है।

रीतिमुक्त कवि दरबारी नहीं हैं। घनानंद जैसे कवि ने दरबार छोड़कर प्रेम की कविताएँ लिखीं हैं। इन कवियों ने सहज और स्वाभाविक प्रेम का चित्रण, विशेषत: विरह की मार्मिक मनोभूमियों का चित्रण किया है। इसीलिए इनकी कविताओं में सूफियों जैसी विरह की उत्कटता मिलती है।

भारतीय काव्य शास्त्र की अवधारणा तथा अभिशप्त जीवन में सरसता का संचार करने की दृष्टि से रीतिकालीन कविता का विशेष महत्व है। ब्रजभाषा को पूर्ण उत्कर्ष तक ले जाने की दृष्टि से भी इस काल का महत्व असंदिग्ध है। इस काल में कला का परिष्कृत रूप देखने को मिलता है। सम्भवत: इसी कारण भक्तिकाल को यदि भावना का स्वर्णकाल कहा गया है तो रीतिकाल को हम कला का स्वर्णकाल कह सकते हैं।

आधुनिक काल (सं. 1900 से अद्यतन)

आधुनिक हिन्दी कविता का प्रारंभ संवत् 1900 से माना जाता है। यह काल अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस काल में हिन्दी साहित्य का चहुँमुखी विकास हुआ। यह काल हिन्दी साहित्य की अनेक प्रवृत्तियों एवं परिवर्तनों को लेकर उपस्थित हुआ। इस काल में धर्म, दर्शन, कला एवं साहित्य सभी के प्रति नए दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ।

आधुनिक हिन्दी कविता के विकासक्रम को विद्वानों ने अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया है, किन्तु सर्वमान्य रूप से इस विकास को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है -

1.	भारतेन्दु युग	-	सन् 1850 से 1900 तक
2.	द्विवेदी युग	-	सन् 1900 से 1920 तक
3.	छायावादी युग	-	सन् 1920 से 1936 तक

4.	प्रगतिवादी युग	-	सन् 1936 से 1943 तक
5.	प्रयोगवादी युग	-	सन् 1943 से 1950 तक
6.	नई कविता	-	सन् 1950 से आज तक

भारतेन्दु युग

भारतेन्दु युग आधुनिक को हिन्दी साहित्य का प्रवेश द्वार माना जाता है। इस युग के कवियों में नवीन के प्रति मोह साथ ही प्राचीन के प्रति आग्रह भी था। भारतेन्दु युग नव जागरण का युग है। इसमें नई सामाजिक चेतना उभरकर आई। भारतेन्दु युग में देशभक्ति और राजभक्ति तत्कालीन राजनीति का अभिन्न अंग थी, जिसका स्पष्ट प्रभाव इस युग के कवियों में देखा जा सकता है।

भारतेन्दु काल में कविता के क्षेत्र में ब्रजभाषा का प्रयोग एवं गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली का प्रयोग किया गया। खड़ी बोली का विकास इस युग की महत्वपूर्ण घटना है। इस युग में पत्रकारिता, उपन्यास, कहानी, नाटक आलोचना, निबंध आदि अनेक गद्य विधाओं का विकास हुआ, जिसका माध्यम खड़ी बोली है। इस युग में प्रत्येक लेखक किसी न किसी पत्रिका का सम्पादन करता था। भारतेन्दु युग में जिन साहित्यिक रूपों और प्रवृत्तियों का बीज बोया गया था, वह द्विवेदी युग में खूब फला फूला।

भारतेन्दु-युगीन काव्य की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. **राष्ट्रीयता की भावना** - इस युग के कवियों ने देश-प्रेम की रचनाओं के माध्यम से जन-मानस में राष्ट्रीय भावना का बीजारोपण किया।
2. **सामाजिक चेतना का विकास** - इस काल का काव्य सामाजिक चेतना का काव्य है। इस युग के कवियों ने समाज में व्याप्त अंधविश्वास एवं सामाजिक रूढ़ियों को दूर करने हेतु कविताएँ लिखीं।
3. **हास्य व्यंग्य** - हास्य व्यंग्य शैली को माध्यम बनाकर पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन तथा सामाजिक अंधविश्वासों पर करारे व्यंग्य प्रहार किए गए।
4. **अंग्रेजी शिक्षा का विरोध** - भारतेन्दु युगीन कवियों ने अंग्रेजी भाषा तथा अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के प्रति अपना विरोध कविताओं में प्रकट किया है।
5. **विभिन्न काव्य रूपों का प्रयोग** - इस काल में काव्य के विविध रूप दिखाई देते हैं जैसे-मुक्तक-काव्य, प्रबन्ध काव्य आदि।
6. **काव्यानुवाद की परम्परा** - मौलिक लेखन के साथ-साथ संस्कृत तथा अंग्रेजी से काव्यानुवाद भी हुआ है।

	भारतेन्दु युगीन प्रमुख कवि	रचनाएँ
1.	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	प्रेम-सरोवर, प्रेम-फुलवारी, वेणु-गीति, प्रेम-मल्लिका।
2.	बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'	जीर्ण-जनपद, आनन्द-अरुणोदय, लालित्य-लहरी।
3.	प्रताप नारायण मिश्र	प्रेम-पुष्पावली, मन की लहर, शृंगार-विलास।
4.	जगमोहन सिंह	प्रेम-सम्पत्ति लता, देवयानी, श्यामा-सरोजिनी।
5.	अम्बिका दत्त व्यास	भारत धर्म, हो हो होरी, पावस-पचासा।
6.	राधाचरण गोस्वामी	नवभक्त माल।

द्विवेदी युग

यह युग कविता में खड़ी बोली के प्रतिष्ठित होने का युग है। इस युग के प्रवर्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं। इन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन किया। इस पत्रिका में ऐसे लेखों का प्रकाशन किया जिसमें नवजागरण का संदेश

जन-जन तक पहुँचाया गया। इस पत्रिका ने कवियों की एक नई पौध तैयार की। इस काल में प्रबंध काव्य भी पर्याप्त संख्या में लिखे गए। अनेक कवियों ने ब्रजभाषा छोड़कर खड़ी बोली को अपनाया। इस काल में खड़ी बोली को ब्रजभाषा के समक्ष काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया, साथ ही विकसित चेतना के कारण कविता नई भूमि पर प्रतिष्ठित हुई। एक ओर खड़ी बोली व्याकरण सम्मत, परिष्कृत एवं संस्कारित रूप ग्रहण कर रही थी दूसरी ओर कविता में लोक जीवन और प्रकृति के साथ ही राष्ट्रीय भावना की समर्थ अभिव्यक्ति हो रही थी। इस समय के प्रबन्ध काव्य में कवियों ने पौराणिक और ऐतिहासिक कथानक को आधार बनाया। इस युग में ऐतिहासिकता, पौराणिकता में भी राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय भावना का स्वर ही उभरकर सामने आता है।

द्विवेदी युगीन कविताओं की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -

1. **देशभक्ति** - द्विवेदी युग में देशभक्ति को व्यापक आधार मिला। इस काल में देशभक्ति विषयक लघु एवं दीर्घ कविताएँ लिखीं गईं।
2. **अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों का विरोध** - इस काल की कविताओं में सामाजिक अंध विश्वासों और रूढ़ियों पर तीखे प्रहार किए गए।
3. **वर्णन प्रधान कविताएँ** - 'वर्णन' प्रधानता इस युग की कविताओं की विशेषता है।
4. **मानव प्रेम** - द्विवेदी युगीन कविताओं में मानव मात्र के प्रति प्रेम की भावना विशेष रूप से मिलती है।
5. **प्रकृति-चित्रण** - इस युग के कवियों ने प्रकृति के अत्यन्त रमणीय चित्र खींचे हैं। प्रकृति का स्वतन्त्र रूप में मनोहारी चित्रण मिलता है।
6. **खड़ी-बोली का परिनिष्ठित रूप** - इस युग की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है खड़ी बोली में काव्य रचना। खड़ी बोली हिन्दी को सरल, सुबोध तथा व्याकरण सम्मत परिनिष्ठित स्वरूप प्रदान किया गया।

	द्विवेदी युगीन प्रमुख कवि	रचनाएँ
1.	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	प्रिय-प्रवास, वैदेही-वनवास, चुभते-चौपदे, रसकलश।
2.	मैथिलीशरण गुप्त	पंचवटी, जयद्रथ-वध, भारत-भारती, साकेत, यशोधरा।
3.	रामनरेश त्रिपाठी	मिलन, पथिक, स्वप्न, मानसी।
4.	माखनलाल चतुर्वेदी	हिमकिरीटिनी, हिमतंरगिनी, युगचरण, समर्पण।
5.	महावीर प्रसाद द्विवेदी	काव्य-मंजूषा, सुमन।

छायावाद

हिन्दी साहित्य के आधुनिक चरण में द्विवेदी युग के पश्चात् हिन्दी काव्य की जो धारा विषय वस्तु की दृष्टि से स्वच्छंद प्रेमभावना, प्रकृति में मानवीय क्रिया कलापों तथा भाव-व्यापारों के आरोपण और कला की दृष्टि से लाक्षणिकता प्रधान नवीन अभिव्यंजना-पद्धति को लेकर चली, उसे 'छायावाद' कहा गया। डॉ. नगेन्द्र ने 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह' को छायावाद माना है। प्रकृति पर चेतना के आरोप को भी छायावाद कहा गया है। आचार्य शुक्ल ने 'प्रस्तुत' के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में 'अप्रस्तुत कथन' को छायावाद माना है। छायावाद के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद ने छायावाद की व्याख्या इस प्रकार की है- ''छायावादी कविता वाणी का वह लावण्य है जो स्वयं में मोती के पानी जैसी छाया, तरलता और युवती के लज्जा, भूषण जैसी श्री से संयुक्त होता है। यह तरल छाया और लज्जा श्री ही छायावादी कवि की वाणी का सौंदर्य है।''

द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, स्थूलता और नैतिकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में छायावादी कविता का विकास हुआ। छायावाद में सामूहिकता के विरुद्ध वैयक्तिकता, रूढ़िवादिता के विरुद्ध स्वच्छंदता, स्थूल के प्रति सूक्ष्म बौद्धिकता एवं यथार्थ के प्रति भावुकता तथा कल्पना और अभिधा प्रधान वर्णनात्मक शैली की प्रतिक्रिया में लाक्षणिक प्रतीकात्मक शैली की व्यापक अभिव्यक्ति हुई है।

छायावाद के कवियों को जहाँ एक ओर बांग्ला साहित्य और विशेषकर कवीन्द्र रवीन्द्र से प्रेरणा प्राप्त हुई, वहीं दूसरी ओर वर्ड्सवर्थ, शैली, टेनीसन, कीट्स और बायरन जैसे अंग्रेजी भाषा के कवियों का भी प्रभाव पड़ा। रूढ़िवाद का विरोध हुआ। इस युग का कवि मानववादी दृष्टिकोण लेकर चला। प्रकृति को चेतन माना और उसका मानवीकरण किया गया। प्रसाद, पंत, निराला तथा महादेवी छायावाद के आधार स्तम्भ कहे जाते हैं।

छायावादी काव्य की विशेषताएँ -

1. **व्यक्तिवाद की प्रधानता** - छायावाद में व्यक्तिगत भावनाओं की प्रधानता है। वहाँ कवि अपने सुख-दुख एवं हर्ष-शोक को ही वाणी प्रदान करते हुए खुद को अभिव्यक्त करता है।
2. **शृंगार भावना** - छायावादी काव्य मुख्यतया शृंगारी काव्य है किन्तु उसका शृंगार अतीन्द्रिय सूक्ष्म शृंगार है। छायावाद का शृंगार उपभोग की वस्तु नहीं, अपितु कौतूहल और विस्मय का विषय है। उसकी अभिव्यंजना में कल्पना और सूक्ष्मता है।
3. **प्रकृति का मानवीकरण** - प्रकृति पर मानव व्यक्तित्व का आरोप छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है। छायावादी कवियों ने प्रकृति को अनेक रूपों में देखा है। कहीं उसने प्रकृति को प्रेयसी के रूप में अपनाया है तो कहीं नारी के रूप में देखकर उसके सूक्ष्म सौंदर्य का चित्रण किया है।
4. **सौंदर्यानुभूति** - यहाँ सौन्दर्य का अभिप्राय काव्य सौन्दर्य से नहीं, सूक्ष्म आंतरिक सौंदर्य से है। बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आंतरिक सौन्दर्य के उद्घाटन में उसकी दृष्टि अधिक रमती है। सौन्दर्योपासक कवियों ने नारी के सौन्दर्य को नाना रंगों का आवरण पहनाकर व्यक्त किया है।
5. **वेदना एवं करुणा का आधिक्य** - हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति की अपूर्णता, अभिलाषाओं की विफलता, सौन्दर्य की नश्वरता, प्रेयसी की निष्ठुरता, मानवीय दुर्बलताओं के प्रति संवेदनशीलता, प्रकृति की रहस्यमयता आदि अनेक कारणों से छायावादी कवि के काव्य में वेदना और करुणा की अधिकता पाई जाती है।
6. **अज्ञात सत्ता के प्रति प्रेम** - अज्ञात सत्ता के प्रति कवि में हृदयगत प्रेम की अभिव्यक्ति पाई जाती है। इस अज्ञात सत्ता को कवि कभी प्रेयसी के रूप में तो कभी चेतन प्रकृति के रूप में देखता है। छायावाद की यह अज्ञात सत्ता ब्रह्म से भिन्न है।
7. **नारी के प्रति नवीन भावना** - छायावाद में शृंगार और सौन्दर्य का संबंध मुख्यतया नारी से है। रीतिकालीन नारी की तरह छायावादी नारी प्रेम की पूर्ति का साधनमात्र नहीं है। वह इस पार्थिव जगत की स्थूल नारी न होकर भाव जगत की सुकुमार देवी है।
8. **जीवन-दर्शन** - छायावादी कवियों ने जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण को अपनाया है। इसका मूल दर्शन सर्वात्मवाद है। सम्पूर्ण जगत मानव चेतना से स्पंदित दिखाई देता है।
9. **अभिव्यंजना शैली** - छायावादी कवियों ने अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए लाक्षणिक, प्रतीकात्मक शैली को अपनाया है। उन्होंने भाषा में अभिधा के स्थान पर लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग किया है।

	प्रमुख छायावादी कवि	रचनाएँ
1.	जयशंकर प्रसाद	कामायनी, लहर, आँसू, झरना।
2.	सुमित्रानंदन पंत	पल्लव, ग्रंथि, गुंजन, वीणा, उच्छ्वास।
3.	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला	परिमल, गीतिका, अनामिका, तुलसीदास।
4.	महादेवी वर्मा	रश्मि, नीरजा, नीहार, सांध्यगीत।

रहस्यवाद

हिन्दी कविता में रहस्यवाद का काल निर्धारण करना कठिन है क्योंकि रहस्यवाद सृष्टि के आरंभ से ही कवियों को प्रिय रहा है। वेदों में ऊषा, मेघ, सरिता आदि के वर्णन में अव्यक्त परमात्मा के स्वरूप को लक्ष्य किया गया है। यह प्रकृति और जगत ही रहस्यमय है। कण-कण में परमात्मा के होने का आभास ही रहस्यवाद है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद की परिभाषा इस प्रकार की है- ''चिंतन'' के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।'' जहाँ कवि इस अनन्त परमतत्व और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है, वहाँ रहस्यवाद है। रामचंद्र शुक्ल ने रहस्यवाद को भारतीय साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि माना है।

बाबू गुलाबराय ने ''प्रकृति में मानवीय भावों का आरोप कर जड़ चेतन के एकीकरण की प्रवृत्ति के लाक्षणिक प्रयोगों को रहस्यवाद कहा है। '' मुकुटधर पांडेय के अनुसार ''प्रकृति में सूक्ष्म सत्ता का दर्शन ही रहस्यवाद है।'' हिन्दी काव्य में छायावादी प्रवृत्ति के जन्म के बहुत पहले कबीर, जायसी, मीरा आदि में रहस्यवाद अपनी पूर्ण गरिमा के साथ विद्यमान है। काव्य में जहाँ भी आत्मा के परमात्मा से मिलकर एकाकर होने की स्थिति की अभिव्यक्ति है वहीं रहस्यवाद है। आधुनिक काल की कविता में रहस्यवाद छायावाद की कविता का एक अंश भर है। पंत, निराला, प्रसाद तथा महादेवी की बहुत सी रचनाओं में रहस्यवाद है किन्तु पूर्ण रचना रहस्यवादी नहीं है।

आधुनिक हिन्दी कविता में रहस्यवाद का उद्भव और विकास छायावाद युग में हुआ। छायावादी कविता के समापन होने तक रहस्यवादी कविताएँ भी लुप्त हो गईं।

रहस्यवाद की विशेषताएँ -

1. **अलौकिक सत्ता के प्रति प्रेम** - इस युग की कविताओं में अलौकिक सत्ता के प्रति जिज्ञासा, प्रेम व आकर्षण के भाव व्यक्त हुए हैं।
2. **परमात्मा से विरह-मिलन का भाव** - आत्मा को परमात्मा की विरहणी मानते हुए उससे विरह व मिलन के भाव व्यक्त किए गए हैं।
3. **जिज्ञासा की भावना** - सृष्टि के समस्त क्रिया कलापों तथा अदृश्य ईश्वरीय सत्ता के प्रति जिज्ञासा के भाव प्रकट किए गए हैं।
4. **प्रतीकों का प्रयोग** - प्रतीकों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति की गई है।

छायावाद तथा रहस्यवाद में अन्तर इस प्रकार है -

छायावाद	रहस्यवाद
इसमें कल्पना की प्रधानता है।	इसमें चिंतन की प्रधानता है।
भावना की प्रधानता है।	ज्ञान व बुद्धितत्व की प्रधानता है।
यह प्रकृति मूलक है।	इसकी प्रकृति दार्शनिक है।

उत्तर छायावाद

इस काल में ''प्रेम और रोमांस'' की एक कविता धारा चली थी जिसमें हरिवंशराय बच्चन, गोपाल सिंह 'नेपाली', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', हरिकृष्ण प्रेमी आदि मुख्य हैं। इनमें एक सीमित क्षेत्र में अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हैं। इस तरह की प्रवृत्ति ज्यादा नहीं चली। इन कवियों के काव्य में श्रृंगार, यौवन, तथा प्रकृति का चित्रण बहुतायत से मिलता है। इनके काव्य में छायावाद के विकास के लक्षण दिखाई देते हैं। जहाँ छायावादी काव्य धारा की त्रयी 'प्रसाद' पंत और 'निराला' के रूप में जानी जाती है, वहीं उत्तर छायावादी काव्य धारा की त्रयी बच्चन, 'सुमन' और 'अंचल' के रूप में जानी जाती है।

प्रगतिवाद

प्रगतिवाद भौतिक जीवन से उदासीन आत्मनिर्भर, सूक्ष्म, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में, लोक के विरुद्ध स्थूल जगत की तार्किक प्रतिक्रिया है। प्रगतिवाद का प्रेरणा स्रोत मार्क्स का द्वंदात्मक भौतिकवाद है। सामाजिक चेतना और भावबोध काव्य का लक्षण है। प्रगतिवादी काव्य में समाजवादी विचारधारा का साम्यवादी स्वर महत्वपूर्ण रहा। राजनीति के क्षेत्र में जो साम्यवाद है साहित्य के क्षेत्र में वही प्रगतिवाद है। मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थक प्रगतिवादी साहित्यकार आर्थिक विषमता को ही वर्तमान दु:ख एवं अशांति का कारण स्वीकार करता है। आर्थिक विषमता के फलस्वरूप समाज दो वर्गों में बँटा है- पूँजीपति-वर्ग अथवा शोषक वर्ग और दूसरा शोषित वर्ग या सर्वहारा वर्ग। प्रगतिवाद अर्थ, अवसर और संसाधनों के समान वितरण द्वारा ही समाज की उन्नति में विश्वास रखता है। सर्वहारा या सामान्य जन की प्राण प्रतिष्ठा के साथ श्रम की गरिमा को प्रतिष्ठित करना और साहित्य में प्रत्येक समाज के सुख-दुख का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करना उसका लक्ष्य है। यह काव्य-धारा, शोषक-वर्ग की भर्त्सना और शोषितों के प्रति सहानुभूति का भाव रखती है। उपयोगितावाद और भौतिक दर्शन से प्रभावित होने के कारण यह काव्य धारा नैतिकता एवं भावुकता की अपेक्षा बुद्धि और विवेक पर अधिक विश्वास करती है।

यह काव्य धारा कला की अपेक्षा 'जीवन' को, व्यक्ति की अपेक्षा समाज को और स्वानुभूति की अपेक्षा सर्वानुभूति को प्रधानता देती है।

प्रगतिवादी चेतना के बीज छायावाद में ही पल्लवित होने लगे थे किंतु तीसरे और चौथे दशक में प्रगतिशील आंदोलन ने काव्य को सामाजिकता की ओर उन्मुख किया। यथार्थ से सम्पृक्ति, जन-जीवन से संलग्नता, मानवीय समस्याओं से सीधे साक्षात्कार, शोषितों के प्रति सहानुभूति काव्य के मूल विषय बन गए। अभी तक किसान वर्ग के प्रति सहानुभूति काव्य में स्थान पाती थी, प्रगतिवाद ने मजदूरों को भी इस कोटि में लाकर खड़ा कर दिया।

प्रगतिवादी काव्य की विशेषताएँ -

1. **शोषकों के प्रति विद्रोह और शोषितों से सहानुभूति** - प्रगतिवादी कवियों ने किसानों, मजदूरों पर किए जाने वाले पूँजीपतियों के अत्याचार के प्रति अपना विद्रोह व्यक्त किया है।
2. **आर्थिक व सामाजिक समानता पर बल** - इस युग के कवियों ने आर्थिक एवं सामाजिक समानता पर बल देते हुए निम्न वर्ग और उच्च वर्ग के अंतर को समाप्त करने पर बल दिया।
3. **नारी शोषण के विरुद्ध मुक्ति का स्वर** - प्रगतिवादी कवियों ने नारी को उपभोग की वस्तु नहीं समझा वरन उसे सम्मानजनक स्थान दिया है। नारी को शोषण से मुक्त कराने हेतु भी इन्होंने प्रयास किए हैं।
4. **ईश्वर के प्रति अनास्था** - इस काल के कवियों ने ईश्वर के प्रति अनास्था का भाव व्यक्त किया है। वे ईश्वरीय शक्ति की तुलना में मानवीय शक्ति को अधिक महत्व देते हैं।
5. **सामाजिक यथार्थ का चित्रण** - प्रगतिवादी कवियों ने व्यक्तिगत सुख-दु:ख के भावों की अपेक्षा समाज की गरीबी, भुखमरी, अकाल, बेरोज़गारी आदि सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति पर बल दिया।
6. **प्रतीकों का प्रयोग** - अपनी भावनाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए इस काल के कवियों ने प्रतीकों का सहारा लिया है।
7. **भाग्यवाद की अपेक्षा कर्मवाद की श्रेष्ठता पर बल** - प्रगतिवादी कवियों ने श्रम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए भाग्यवाद को पूँजीवादी शोषण का हथियार बताया है।

	प्रमुख प्रगतिवादी कवि	रचनाएँ
1.	नागार्जुन	युगधारा, सतरंगे पंखों वाली, प्यासी पथराई आँखें।
2.	केदारनाथ अग्रवाल	युग की गंगा, फूल नही रंग बोलते हैं, नींद के बादल।
3.	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	हिल्लोल, जीवन के गान, प्रलय सृजन, विश्वास बढ़ता ही गया।
4.	त्रिलोचन	धरती, मिट्टी की बारात, मैं उस जनपद का कवि हूँ।
5.	रांगेय राघव	अजेय खण्डहर, मेधावी, पांचाली, राह के दीपक।
6.	सुमित्रानंदन पंत	युगवाणी, ग्राम्या।
7.	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	कुकुरमुत्ता।

प्रयोगवाद

हिन्दी में प्रयोगवाद का प्रारम्भ अज्ञेय के सम्पादन में प्रकाशित 'तारसप्तक' से माना जा सकता है। इसकी भूमिका में अज्ञेय ने लिखा है – ''ये कवि नवीन राहों के अन्वेषी हैं।'' स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अज्ञेय के सम्पादन में 'प्रतीक' मासिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। उसमें प्रयोगवाद का स्वरूप स्पष्ट हुआ।

जीवन और जगत के प्रति अनास्था प्रयोगवाद का एक आवश्यक तत्व है। साम्यवाद के प्रति भी अनास्था उत्पन्न कर देना उसका लक्ष्य है। वह कला को केवल कला के लिए ही मानता है। अहं का विसर्जन तथा साहित्य का सामाजीकरण इसका महत्वपूर्ण लक्षण था। इन कवियों की अनुभूति का केन्द्र इनका अहम् है। इनकी वाणी में 'मैं' का तीव्र विस्फोट है।

जीवन के प्रति विभिन्न कुण्ठाओं ने प्रयोगवादी कवि को शंकाकुल एवं भयाकुल बना दिया है। कवि बहुत कुछ कहना चाहता है, परन्तु कुछ कह नहीं पाता। जीवन की यह घुटन इस वर्ग की कविताओं में व्याप्त है। इन कवियों ने नए उपमान नया छंद विधान गढ़ने, नए शब्दों का प्रयोग करने तथा शब्दों में नए अर्थ भरने के प्रयोग भी किए हैं।

प्रयोगवादी काव्य की विशेषताएँ -

1. **नवीन उपमानों का प्रयोग** – प्रयोगवादी कवियों ने पुराने एवं प्रचलित उपमानों के स्थान पर नवीन उपमानों का प्रयोग किया है। वे मानते हैं कि काव्य के पुराने उपमान अब बासी पड़ गए हैं।
2. **प्रेम भावनाओं का खुला चित्रण** – इन्होंने प्रेम भावनाओं का अत्यन्त खुला चित्रण कर उसमें अश्लीलता का समावेश कर दिया है।
3. **बुद्धिवाद की प्रधानता** – इस युग के कवियों ने बुद्धि तत्व को अधिक प्रधानता दी है इसके कारण काव्य में कहीं–कहीं दुरूहता आ गई है।
4. **निराशावाद की प्रधानता** – पयोगवादी कवियों ने मानव मन की निराशा, कुंठा व हताशा का यथातथ्य रूप में वर्णन किया है।
5. **लघुमानव वाद की प्रतिष्ठा** – इस काल की कविताओं में मानव से जुड़ी प्रत्येक वस्तु को प्रतिष्ठा प्रदान की गई है तथा उसे कविता का विषय बनाया गया है।
6. **अहं की प्रधानता** – फ्रायड के मनोविश्लेषण से प्रभावित ये कवि अपने अहं को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं।
7. **रूढ़ियों के प्रति विद्रोह** – इस काल की कविताओं में रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का स्वर मुखर हुआ है। इन कवियों ने रूढ़ि मुक्त नवीन समाज की स्थापना पर बल दिया है।
8. **मुक्त छन्दों का प्रयोग** – प्रयोगवादी कवियों ने अपनी कविताओं के लिए मुक्त छन्दों का चयन किया है।
7. **व्यंग्य की प्रधानता** – इस काल के कवियों ने व्यक्ति व समाज दोनों पर अपनी व्यंग्यात्मक लेखनी चलाई है।

	प्रमुख प्रयोगवादी कवि	रचनाएँ
1.	अज्ञेय	हरी–घास पर क्षण भर
2.	मुक्तिबोध	चाँद का मुँह टेढ़ा है, भूरी–भूरी खाक धूल
3.	धर्मवीर भारती	अंधायुग, कनुप्रिया, ठंडा लोहा
4.	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	बाँस के पुल, एक सूनी नाव, काठ की घंटियाँ
5.	नरेश मेहता	संशय की एक रात, बन पांखी सुनो
6.	गिरिजा कुमार माथुर	धूप के धान, शिला पंख चमकीले, नाश और निर्माण
7.	भारत भूषण अग्रवाल	ओ अप्रस्तुत मन

नई कविता

प्रयोगवादी कविता का ही आगे का दौर नई कविता के रूप में उभरा है। वस्तुत: नई कविता की विषय वस्तु मात्र चमत्कार न होकर एक भोगा हुआ जीवन यथार्थ है। नई कविता परिस्थितियों की उपज है। नई कविता स्वतंत्रता के बाद लिखी गई वह कविता है जिसमें नवीन भावबोध, नए मूल्य तथा नया शिल्प विधान है। विश्वयुद्ध के बाद पहली बार मनुष्य की विवशता, असहायता सामने आई और उसने अस्तित्व का संकट अनुभव किया।

नई कविता में मानव का वह रूप जो दार्शनिक है, वादों से परे है, जो एकांत में प्रकट होता है, जो प्रत्येक स्थिति में जीता है, प्रतिष्ठित हुआ है। उसने लघु मानव को, उसके संघर्ष को बार-बार वर्ण्य विषय बनाया है। नई कविता में दोनों परिवेशों को लेकर लिखने वाले कवि हैं। एक ओर ग्रामीण परिवेश, दूसरी ओर शहर जिसमें कुंठा, घुटन, असमानता, कुरूपता आदि का वर्णन हुआ है। गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर सिंह शहरी परिवेश के कवि हैं। दूसरी ओर ग्रामीण परिवेश भवानीप्रसाद मिश्र, केदारनाथ सिंह, नागार्जुन आदि के काव्य में अभिव्यक्त है।

नई कविता को वस्तु की अपेक्षा शिल्प की नवीनता ने अधिक गंभीर चुनौती दी है। नए शिल्प अपनाना और परम्परागत शिल्प को तोड़ना दुष्कर कार्य था। अतएव कुछ कवियों को छोड़कर छोटी-मोटी कविताओं की प्रचुरता रही। प्रभावशीलता की दृष्टि से ये छोटी-छोटी रचनाएँ भी बड़े-बड़े वृत्तान्तों से कहीं अधिक सफल बन पड़ी है।

घुटन, आक्रोश और नैराश्य में व्यंग्य का जन्म लेना स्वाभाविक था। इसलिए नई कविता में व्यंग्य की भी प्रधानता रही है।

नई कविता की प्रमुख विशेषताएँ -

1. **लघु मानव वाद की प्रतिष्ठा** - मानव जीवन को महत्वपूर्ण मानकर उसे अर्थपूर्ण दृष्टि प्रदान की गई।
2. **प्रयोगों में नवीनता** - नए-नए भावों को नए-नए शिल्प विधानों में प्रस्तुत किया गया है।
3. **क्षणवाद को महत्व** - जीवन के प्रत्येक क्षण को महत्वपूर्ण मानकर जीवन की एक-एक अनुभूति को कविता में स्थान प्रदान किया गया है।
4. **अनुभूतियों का वास्तविक चित्रण** - मानव व समाज दोनों की अनुभूतियों का सच्चाई के साथ चित्रण किया गया है।
5. **कुण्ठा, संत्रास, मृत्युबोध** - मानव मन में व्याप्त कुण्ठाओं का, जीवन के संत्रास एवं मृत्युबोध का मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण इस काल की कविताओं की पहचान है।
6. **बिम्ब** - इस युग के कवियों ने नूतन बिम्बों की खोज की है।
7. **व्यंग्य प्रधान रचनाएँ** - इस काल में मानव जीवन की विसंगतियों, विकृतियों एवं अनैतिकतावादी मान्यताओं पर व्यंग्य रचनाएँ लिखी गई हैं, जो इस प्रकार हैं—भवानी प्रसाद मिश्र (सन्नाटा, गीत फरोश, चकित है दु:ख), कुंवर नारायण (चक्रव्यूह, आमने-सामने), शमशेर बहादुर सिंह (काल तुझसे होड़ मेरी, इतने पास अपने, बात बोलेगी हम नहीं), जगदीश गुप्त (नाव के पाँव, शब्द दंश, बोधि-वृक्ष, शम्बूक), दुष्यन्त कुमार (सूर्य का स्वागत, आवाजों के घेरे, साये में धूप), श्रीकान्त वर्मा (दिनारम्भ, भटका मेघ, माया-दर्पण, मगध), रघुवीर सहाय (हँसो-हँसो जल्दी हँसो, आत्म हत्या के विरुद्ध) नरेश मेहता (वनपाखी सुनो, बोलने दो चीड़ को, उत्सव)।

नवगीत

नई कविता जैसे-जैसे पुस्तकीय होती गई वैसे-वैसे उसकी पठनीयता क्षीण होती गई। पाठकों से, श्रोताओं से जैसे उसने मुख मोड़ लिया हो। कवियों के बीच, वह भी वैचारिक प्रतिबद्ध, खेमेबन्द अथवा चन्द श्रोताओं के बीच, सुनने और पढ़ने तक सीमित हो गई। मुहावरा दिया गया कि कविता के आस्वाद के लिए श्रोता को भी पात्र होना चाहिए। श्रोता को अपनी रुचि और समझ का विस्तार करना चाहिए।

कविता के प्रति बढ़ती हुई वितृष्णा को कवियों और गीतकारों ने भी अनुभव किया। उन्होंने गीतों की छन्दसत्ता, लय-ताल और आंचलिक बोली के माधुर्य को बनाए रखने का निश्चय किया। समकालीन संवेदना, शोषण और उत्पीड़न को विषय बनाए रखने की प्रतिबद्धता बनाए रखी। नई कविता की तरह उन्होंने परंपरा-विरोध को नहीं पाला, अपितु परंपरा में जो भी सुष्ठु और सुन्दर समझा, उसे स्वीकार किया। इसी को गीत के विकास के रूप में नवगीत की संज्ञा प्राप्त हुई जिसे नई कविता और गीत की संकर सृष्टि कहा जा सकता है। इस तरह नवगीत ने नई-कविता को

छिन्न-भिन्न होने से बचाया, वहीं गीत को अपनी प्रार्थनाशील, प्रशंसात्मक और आत्ममुग्ध भावदशा से बाहर निकालकर समकालीन बनने के लिए समुन्नत किया।

इन गीतकारों में—सोम ठाकुर (एक ऋचा पाटल की), शम्भुनाथ सिंह (दर्द जहाँ नीला है, नवगीत दशक), आनंद मिश्र, वीरेन्द्र मिश्र (झुलसा है छाया नट धूप में, गीतम), रमानाथ अवस्थी (बन्द न करना द्वार) आदि महत्वपूर्ण नव गीतकार हैं।

मध्यप्रदेश का लोक-साहित्य

'लोक-साहित्य' एक युग्म शब्द है। यह 'लोक' और 'साहित्य' शब्दों से मिलकर बना है। 'लोक' का प्रचलित अर्थ संसार है, परन्तु इसका व्यापक अर्थ 'लोग' अथवा 'जन-साधारण' है।

'साहित्य' शब्द किसी भाषा में अनुभूतिमय एवं भावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए प्रचलित है। 'साहित्य' लिखित भी होता है और मौखिक भी। मौखिक साहित्य 'वाचिक' (कही हुई) तथा 'श्रुति' (सुनी हुई) परम्परा है। यह 'जनसाधारण' अर्थात् 'लोक' की स्मृति से आता है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विरासत में प्राप्त होता है, इसलिए इसे 'लोक-साहित्य' कहा जाता है।

लोक-साहित्य एक अविरल धारा है, अतः इन अभिव्यक्तियों के मूल सर्जक अज्ञात हैं। इसके विपरीत लिखित साहित्य की प्रत्येक रचना के साथ उसके सर्जक का नाम अंकित होता है।

लोक-साहित्य की प्रत्येक उक्ति में लोक-जीवन के गहरे अनुभव की सुगंध होती है। यह जनसाधारण के सुख-दुख, आचार-व्यवहार और विचारों का संवाहक होता है, जो हमें तत्कालीन समाजों की प्रथा-परम्पराओं, सभ्यता-संस्कारों और जीवनशैलियों का बोध कराता है। इस दृष्टि से लोक-साहित्य में सम्बन्धित समुदाय के जातीय इतिहास के सूत्र भी निहित होते हैं।

लोक-साहित्य के अंतर्गत प्रमुख रूप से पारम्परिक गीत, कथाएँ, गाथाएँ, नाट्य, लोकोक्तियाँ (कहावतें, मुहावरें, पहेलियाँ) और लोक भाषाओं के आनुष्ठानिक अथवा उपचारात्मक मंत्र इत्यादि सम्मिलित हैं। प्रदेश में इनकी विपुल सम्पदा है। लोकांचलों में जन्म, मृत्यु, विवाह, पूजा-अनुष्ठान, पर्व-उत्सव, नृत्य, क्रीड़ा, श्रम आदि प्रत्येक अवसर पर प्रसंग के अनुरूप गीत गाने की परम्परा है। पहेलियों (बुझौवल), कहावतों और कहानियों का खजाना भी है। लोक-भाषाओं की वास्तविक शक्ति ही उनके मुहावरे हैं। शास्त्रीय दृष्टि से साहित्य की प्रत्येक विधा लोक-साहित्य में पूरी ठसक और सज-धज के साथ विद्यमान है।

मध्यप्रदेश के लोक-साहित्य में आँचलिक अथवा जनपद भाषाओं के साथ-साथ जनजातीय भाषाओं का मौखिक साहित्य भी सम्मिलित है। अतः इसे निम्नांकित दो भागों में बाँट सकते हैं—

अ. आँचलिक अथवा जनपद-साहित्य **ब.** जनजातीय साहित्य

अ. आँचलिक अथवा जनपद साहित्य : किसी विशेष क्षेत्र अथवा जनपद (लोकांचल) में प्रचलित बोली के पारम्परिक साहित्य को आँचलिक अथवा जनपद साहित्य की श्रेणी में रखा जाता है। इसके लिए जाति विशेष अथवा भौगोलिक सीमाओं का बंधन नहीं होता है। मध्यप्रदेश में चार प्रमुख जनपद (लोक) भाषाएँ हैं— (1) बुंदेली (2) बघेली (3) मालवी और (4) निमाड़ी।

1. **बुंदेली :** बुंदेलखण्ड में प्रचलित लोकभाषा बुंदेलखण्डी या बुंदेली कहलाती है। इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। यह उत्तरप्रदेश के बुंदेलखण्ड और मध्यप्रदेश के टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, सागर, दमोह, जबलपुर, कटनी, नरसिंहपुर, सिवनी, रायसेन, भोपाल, सीहोर (बुदनी), होशंगाबाद, विदिशा, गुना, अशोकनगर, भिण्ड, मुरैना, ग्वालियर, दतिया, शिवपुरी आदि जिलों में प्रमुख रूप से बोली जाती है। यह बोली पश्चिमी हिन्दी के लगभग आधे क्षेत्र में व्यवहृत होती है। बुंदेली की व्यापकता के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है— भैंस बँधी है ओड़से, पड़ा होशंगाबाद।
लगबइया है सागरे, चपिया रेवा पार।।

बुंदेली का लोक-साहित्य अपनी क्षेत्रीय व्यापकता के कारण अन्य भाषा-बोलियों के सम्पर्क में आने से अधिक समृद्ध हुआ है।

2. **बघेली :** बघेलखण्ड में व्यवहृत भाषा को बघेलखण्डी या बघेली कहा जाता है। भाषा वैज्ञानिकों ने इसे आर्य भाषा-परिवार में पूर्वी हिन्दी के अंतर्गत अवधी और छत्तीसगढ़ी के साथ रखा है। बघेली पर अवधी और छत्तीसगढ़ी का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। यह मध्यप्रदेश के रीवा, सतना, सीधी, शहडोल, अनूपपुर आदि जिलों में प्रमुख रूप से बोली जाती है। इस भाषा में भी पारम्परिक गीत, कथाओं, लोकोक्तियों का भण्डार है।

3. **मालवी :** मालवी भाषा का प्रमुख क्षेत्र प्राचीन मालवा अथवा मालवा क्षेत्र है। यह प्रमुख रूप से उज्जैन, इन्दौर, देवास, धार, रतलाम आदि जिलों में व्याप्त है। मालवी का लोक साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। इसके गीतों, कथाओं और लोकोक्तियों की अलग बनक है, जो इसकी प्रसिद्धि का कारण भी है।

4. **निमाड़ी :** प्रदेश के निमाड़ क्षेत्र में बोली जाती है। इसका प्रसार प्रमुख रूप से खण्डवा, खरगौन, बड़वानी, धार, झाबुआ, देवास, हरदा और होशंगाबाद जिलों तक है। निमाड़ी के लोक-साहित्य में आनुष्ठानिक और भक्तिपरक गीतों का बाहुल्य है। लोक कथाओं, गाथाओं, लोकोक्तियों का भी अक्षय भण्डार है। इस क्षेत्र के प्रसिद्ध संत सिंगाजी के पद निमाड़ी में ही है। इस लोक भाषा पर गुजराती और राजस्थानी का प्रभाव दिखाई देता है।

ब. **जनजातीय साहित्य :** मध्यप्रदेश में कुल 43 अनुसूचित जनजातियाँ अथवा जनजाति समूह है। जनसंख्या की दृष्टि से भील, गोंड एवं कोरकू जनजातियाँ प्रमुख हैं। इनकी अपनी पृथक्-पृथक् बोलियाँ भी हैं, जिन्हें सम्बन्धित जनजाति के नाम से ही जाना जाता है— (1) भीली (2) गोंडी और (3) कोरकू।

1. **भीली :** भील जनजाति की भाषा 'भीली' कहलाती है। इस समूह में भिलासा की भाषा 'भिलासी' बारेला की भाषा 'बारेली' और पटलिया अथवा 'पटेलिया' कहलाती है। आर्य भाषा परिवार की ये बोलियाँ प्रमुख रूप से झाबुआ, अलीराजपुर, धार, खरगौन, बड़वानी, रतलाम, मंदसौर आदि जिलों में प्रचलित हैं। भीली समूह में मौखिक गीतों, कथाओं, गाथाओं, लोकोक्तियों और मंत्रों का अकूत खजाना है।

2. **गोंड :** गोंड जनजाति की बोली गोंडी कहलाती है। यह गोंडवाना अर्थात् पुराने मध्यभारत की प्रमुख बोली रही है। द्रविड़ भाषा-परिवार की इस बोली के अन्य रूपों में परधानी, अबूझमाड़ी, दोरली आदि प्रमुख हैं। इसकी मौखिक परम्परा में गीत और कथाओं के साथ ही बाना वाद्य के साथ गायी जाने वाली प्रमुख गाथाओं की समृद्ध परम्परा है। इस बोली का विस्तार प्रदेश के मण्डला, डिण्डोरी, बालाघाट, जबलपुर, सिवनी, शहडोल, सीधी, रायसेन, होशंगाबाद, बैतूल, छिंदवाड़ा आदि जिलों तक देखा जा सकता है।

3. **कोरकू :** कोरकू जनजाति की बोली 'कोरकू' कहलाती है। 'कोर' का अर्थ मनुष्य है। 'कू' प्रत्यय लगाकर बहुवचन बनाया गया है। आस्ट्रिक भाषा-परिवार की यह बोली सतपुड़ा पर्वत श्रृंखलाओं के साथ विस्तारित है। प्रदेश के खण्डवा, बुरहानपुर, हरदा, होशंगाबाद, बैतूल आदि जिलों में यह प्रचलित है। इस बोली में पारम्परिक गीत कथाएँ, लोकोक्तियाँ और मंत्रों का भण्डार है।

इनके अलावा मवासी जनजाति की 'मवासी', निहाल जनजाति की 'निहाली', बैगा जनजाति की 'बैगानी' और भारिया जनजाति की 'भरनोटी' में भी पर्याप्त मौखिक साहित्य है। सीमावर्ती मण्डला, डिण्डोरी, अनूपपुर, बालाघाट आदि जिलों में छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य भी प्रचलित है।